Nāsadīyam
A Multi-Disciplinary National Research Journal (Annual)
Peer Reviewed/Refereed
Available online at: https://nasadiyam.dmmkkr.ac.in/
Volume 1, Issue 1 (Jan – Dec), 2022, Pp 1-10

दयानन्द दर्शन में ईश्वर मीमांसा

डॉ॰ सुमन कुमारी (राजन)
सह प्रवक्त्री (संस्कृत विभाग)
दयानन्द महिला महाविद्यालय
कुरूक्षेत्र, हरियाणा, भारत
ई-मेलः rajansuman2014@gmail.com
दूरभाषः 9416291884

संक्षेपिका

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में वेद परमप्रमाण है। वेद का एक-एक पदअनेक अर्थोंका संवहन कर रहा है। यदि हम इन पदों और वैदिक परिभाषाओं को अभिधेयार्थ में ही देखें तो कदाचित् उसके गहनतम आशय पर न पहुँच सकेंगे। वेदार्थ न केवल शब्दार्थ सम्बन्ध की विभिन्न काव्यीय विधाओं के उच्चतम सिद्धातों के ज्ञान की अपेक्षा रखता है अपितु योगज परावरज्ञमेधा भी इसके लिए आवश्यक है। महर्षि दयानन्द का वेदभाष्य इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने वेद के आधार पर ईश्वर के स्वरूप को प्रतिपादित किया है। सृष्टि का विस्तार एंव संरक्षण, कर्मफल व्यवस्था का संचालन एंव वेद जैसे दिव्यज्ञान का प्रकाशन ईश्वर के द्वारा होता है। उसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त ईक्षण और अनन्त सामर्थ्य है। समस्त चराचर पर इसी का अधिकार है। ईश्वर एक रस है। संख्यात्मक दृष्टि से वैदिक ऋचांए उसे एक मानती हैं। बहुदेववाद का विचार वस्तुतः उत्तरवर्ती विचार है। ईश्वर के गुण, कर्म एंव सम्बन्धों का कथन करने के लिए विशेषण के रूप में उसके विभिन्न नाम प्रयुक्त किए गए हैं। वह सर्वव्यापक, सृष्टिकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वाधारक, सर्वज्ञानमय एंव परमचैतन्य है। उसके चैतन्य से ब्रह्माण्ड का अणु-अणु अनुशासित है। इसके अणु-अणु में संयुक्त होता हुआ भी वह इससे अलिप्त है, यही उसकी प्रवरता और महनीयता है।

कुंजी शब्दः- वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, महर्षि दयानन्द, सर्वव्यापक, सृष्टिकर्त्ता, सत्यार्थप्रकाश,उपनिषद्, बहुदेवतावाद, आनंदस्वरूप, ब्रह्माण्ड।

शोधपत्र

ऋषि दयानन्द का सम्पूर्ण व्यक्तित्व वेद से अनुप्राणित है। उनकी चेतना और ऊर्जा वेद से ही दृढ़, दृढ़तर और दृढ़तम हो रही हैं। उनका सम्पूर्ण कर्तृत्त्व वेद से निर्देशित है। उनके लिए वेद समग्र है। उनका दर्शन वेदमय है उनका सपना भी वेदमय है और उनका प्रयास भी वेदमय है वस्तुतः वे वेदपुरुष हैं। अपनी कालजयी कृति सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने वेद की तुला पर विश्व के अनेक दर्शनों, सम्प्रदायों, मान्यताओं एंव व्यवस्थाओं को तोला है। जहाँखोट नजर आया है उसे ऋषि दयानन्द ने बिना किसी संकोच के स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त भी कर दिया है। अपनी इस धारणा को वे सत्यार्थप्रकाश में अंकित करते हैं कि - 'प्रश्न-तुम्हारा मत क्या है?उत्तर- वेद अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है, उसको हम यथावत् करना, छोड़ना मानते हैं। जिस लिए वेद हमको मान्य है इसलिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यो को ऐकमत्य होकर रहना चाहिए।[1(क)] सत्यार्थप्रकाश में ही वे अन्यत्र लिखते हैं कि 'वेद परमेश्वरोक्त हैं। इसी के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा मत क्या है? तो यही उत्तर देना कि हमारा मत 'वेद' अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है, हम उस सब को मानते हैं।' [1(ख)] इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने वेद की कसौटी पर ही समस्त तत्त्वों का

मूल्यांकन न केवल स्वयं किया अपितु अन्यों को भी करने का परामर्श दिया। ईश्वर भी इन्हीं तत्वों में से एक है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के सप्तम समुल्लास सहित अन्य ग्रन्थों में वेद प्रतिपादित ईश्वर के स्वरूप का उल्लेख किया है। उनके वेदभाष्य में भी इस विषय से सम्बद्ध बहुत से वक्तव्य विद्यमान हैं। ईश्वर के सन्दर्भ में भारतीय समाज बहुत आशंकित तथा आतंकित होते हुए भी बहुत उत्साही है। सामान्य रूप से भारतीय जन स्वयं को उपलब्ध समस्त सुख-दुःखों को उसी की इच्छा या प्रसाद मानकर जीते हैं। हिन्दू धर्म-दर्शन में आस्था रखने वाले आमजन की प्रायः यही धारणा है कि ईश्वर उनके उद्धार हेतु, उनकी रक्षा हेतु, धर्म की स्थापना हेतु तथा दुष्टों के संहार हेतु जन्म लेंगे। वह पहले भी आते रहे हैं और आगे भी आते रहेंगे। गीता के आश्वासन ने आम हिन्दू के इस चिन्तन को अटल विश्वास में बदल दिया है।[2(क)] वह यह भी मानते हैं कि ईश्वर की पूजा कर उसे प्रसन्न किया जा सकता है। उसकी पूजा की सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया के रूप में उन्होंने मूर्तिपूजा को विकसित किया। हिन्दूओं की दृष्टि में देव अनेक हैं। पुराण आदि ग्रन्थों में इन देवों में हम परस्पर संघर्ष होता हुआ पाते हैं। यह संघर्ष प्रायः पद प्रतिष्ठा, प्रभाव, अमरत्व इत्यादि को प्राप्त करने से सम्बद्ध रहा है। वस्तुतः पुराणों में ईश्वर और उससे सम्बन्धित पूजा पद्धतियों के वर्णनक्रम में प्रायः विभ्रम एंव अराजक चिन्तन ही उपलब्ध होता है।

ऋषि दयानन्द ने भारतीय समाज में विद्यमान ईश्वर विषयक विभिन्न धारणाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन्होंने इसके साहित्यिक, सामाजिक, दुष्परिणामों को ऐतिहासिक सन्दर्भ में स्पष्टता के साथ समझा। शास्त्रीय वक्तव्यों की अन्तःपरीक्षा की तथा तर्क एवं व्यवहार की कसौटी पर उन्हें कसा। उन्होंने अपने सम्पूर्ण आकलन में वेदों को ही विश्वसनीय पाया। वेदों को समझने के क्रम में उन्होंने अनुभव किया कि वैदिक ऋचाओं की व्याख्याओं में भाष्यकारों ने बहुत असंगत एंव अराजक प्रकृति अपनाई है। इस साहित्यिक कदाचार को उन्होंने अपने वेदभाष्य द्वारा दूर करने का महान एंव ऐतिहासिक उपक्रम किया। उन्होंने वेदार्थ के लिए आवश्यक सभी विधाओं के मर्म को समझ कर वेदभाष्य किया। इसी क्रम में उन्होंने ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को समझा तथा उसका श्रुति, तर्क एवं युक्ति के आधार पर प्रतिपादन किया। वेदभाष्य के अतिरिक्त अपने अन्य ग्रन्थों में भी ऋषि दयानन्द ने वेद के प्रमाण से ही विभिन्न तत्त्वों के विषय में अपनी धारणा को अभिव्यक्त किया है।

सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि 'प्रश्न - वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो वा नहीं? उत्तर - नहीं मानते। क्योंकि चारों वेदों में कहीं यह नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों । किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।'[1(ग)] वेद एकेश्वरवादी है या बहुदेववादी ? इस पर लम्बी बहस चली है ऋषि दयानन्द को छोड़कर वेद के क्षेत्र मे कार्य करने वाले एतद्देशीय व विदेशीय, प्रायः सभी विश्रुत विद्वानों के वक्तव्यों या व्याख्याओं से स्पष्ट होता है कि वे वेदों को बहुदेववाद का प्रस्तोता मानते हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 164 वें सूक्त तथा दशम मण्डल के 129 वें सूक्त में जिन विद्वानों नें ईश्वर के एक होने के पक्ष में स्पष्टतया वेद का समर्थन देखा उन्होंने भी इन मण्डलों को उत्तरवर्ती कहकर इन्हें ऋग्वेद की मूल विचारधारा के विरुद्ध घोषित कर दिया।

बहुदेवतावाद का समर्थन बहुधा ऋग्वेद में वर्णित विभिन्न देवों या देवशक्तियों के आधार पर किया जाता है। अनेक देवों के विभिन्न कर्मों, उनके भिन्न आयुधों एंव वाहनों के प्रतीकात्मक वर्णन से तथा अन्यान्य ऋचाओं में इन देवों की संख्या तैंतीस एवम् इससे भी अधिक बताए जाने से इस चिन्तन को अत्यन्त ऊर्जा मिली है।[3] यजुर्वेद में यद्यपि एकाधिक मन्त्रों में इन देवों की सख्या तैंतीस[4] और इससे भी अधिक[4(घ)] बताई गई हैपरन्तु यजुर्वेद ईश्वर की संख्यात्मक अनेकता के प्रतिपादन में उत्साहित नहीं है। वेद के उन अध्येताओं, जिन्होंने विभिन्न मन्त्रों में

अनेक शक्तियों को कार्य करते देख या उनसे स्तुतिपूर्वक की गई प्रार्थनाओं को देखकर तात्त्विक रूप से उनके अलग देव होने की कल्पना की गई है, के लिए वेद महत्त्वपूर्ण रहस्य का उद्घाटन करता है कि अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि नामों से वही एक परमात्मा ज्ञेय और अभिधेय है।[4(ङ)] इस रहस्योद्घाटन की तात्त्विकता में ऋग्वेद साक्षी है।[5]यजुर्वेद द्वारा प्रदत्त नामों की इस सूची में अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्र और प्रजापति शब्द पुल्लिंग हैं तो आपः शब्द स्त्रीलिङ्ग है तथा शुक्र एंव ब्रह्म शब्द नपुंसकलिङ्ग है।ये तीनो-लिड्.गों के शब्द एक ही परमात्मा के लिए प्रयुक्त हैं इससे स्पष्ट है कि शब्दों के भेद लिङ्ग एंव वचनभेद से उदिष्ट का भेद अभिप्रेत नहीं है।

अथर्ववेद परमात्मा के एकत्व का बड़े प्रबल शब्दों में समर्थन करता है कि वह परमात्मा एक ही है, वह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम आदि किसी सीमित अनन्त संख्या से अभिहित नहीं किया जाता।यह सम्पूर्ण जगत् उसी में है। वह अत्यन्त बलवान है, वह एक ही है, केवल एक ही है, निश्चय से एक ही है, यह तेजस्वी पदार्थ इसमेंएक बनकर रहते हैं।[6] ऋग्वेद की स्पष्ट घोषणा है कि उषा, सूर्य आदि प्रतीकों में उसी एक तत्त्व का सन्दर्शन करना चाहिए।[7] अनेक देवों के नामों के पीछे वही एक संप्रश्न नामक देव जिसमें सब भुवनों का पर्यवसान है, समाविष्ट है।[8]यजुर्वेद ने जैसे इस विषय का उपसंहार करते हुए स्वर दिया है। कि सभी देवता नाममात्र से भिन्न प्रतीत होते है, वस्तुतः उनका महान् सामर्थ्य अथवा उनकी शक्ति एक ही है।[8(क)] इसी आशय की घोषणा करता एक वाक्य ऋग्वेद की 3.55.1-22 की ऋचाओं के साथ भी सयुंक्त है।[9]'कठोपनिषद्' एंव 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में एक मन्त्र को उद्धृत करके कहा गया है कि जिसमें से सूर्य उदय होकर पुनः अस्त होता है, उसी में समस्त देवता आ जाते हैं।[10]महाभारत केअनुशासन-पर्व में इस परम-तत्त्व के एकत्व का निरूपण करते हुए कहा गया है कि एक ही तत्व द्विधा, बहुधा, शतधा, सहस्रधा वर्णित है।[11] इस कथन का श्रीमद्भगवद्गीता ने भी यह कहकर समर्थन किया है कि विविध छन्दों में पृथक् - पृथक् ऋषियों ने एक ही तत्त्व का बहुधा बखान किया है।[2(ख)] वैदिक सन्दर्भों की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करने वाले यास्क मुनि स्वंय ईश्वर के एकत्व के प्रबल समर्थक है।[12]

इस प्रकार वैदिक ऋचाओं में देवताओं का जो चित्रण हुआ है उसका आशय यदि हम प्रत्यक्षप्रियता और कर्मविभिन्नता के आधार पर ग्रहण करेंगे तो निश्चयेन वेदमन्त्रों में बहुदेवतावाद की सृष्टि हो जाएगी, पर यदि उनका अनुशीलन हम परोक्षप्रियता और एक ईश्वर के अनेक गुणों के आधार पर करें तो वस्तुतः इन्द्रादि देव एक ही ईश्वर के विविध अभिधानोंके रूप में उपस्थित होंगे तथा इन नामों का 'नामधा' देव एक ही होगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद (32.1) के आधार पर अपनी कृति 'ऋग्वेदादिभाष्य' भूमिका के वेदविषयविचार प्रकरण में बहुदेववाद का प्रबल खण्डन कर अग्नि, आदित्य आदि प्राकृतिक देंवो को ब्रह्म के ही शक्तिरूप सिद्ध करते हुए परमसत् ब्रह्म के एकत्व की विचारधारा को क्रान्तिकारी समर्थन और तर्क दिए। पृथक्-पृथक् कर्मो के कारण उसे पृथक्-पृथकनामों से पुकारा गया, जैसे एक ही मनुष्य को लोक में विभिन्न सम्बन्धों, कर्मों और गुणों आदि की अपेक्षा से पिता, गुरु, सखा, पाचक, धावक, सत्यवादी, परोपकारी, धर्मात्मा आदि अभिधानों से अभिहित कर दिया जाता है। वस्तुतः किसी व्यक्ति, सत्ता या वस्तु के विभिन्न नामों की सृष्टि चार विभिन्न अपेक्षाओं से होती है- (1) निजस्वरूप-कथन की दृष्टि से (2) गुण-कथन की दृष्टि से (3) सम्बन्ध-कथन की दृष्टि से (4) कर्मबोधन की दृष्टि से। इन आधारों पर निम्न चार प्रकार के नाम हो सकते हैः निजनाम, गुणवाचक नाम, सम्बन्ध सूचक नाम और कर्मबोधक नाम।

निश्चयेन एक ही परमसत् को विभिन्न कार्यो के सम्पादन की दृष्टि से विकेन्द्रित कर व्याख्यान करने की प्रवृत्ति के यही चार आधार हैं। आचार्य प्रियव्रत वेदावाचस्पति का निष्कर्ष है कि 'वेद की अन्तःसाक्षियों से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि वहाँ अग्नि, वरुण, अग्नि सूर्यादि नामों से किन्हीं विशिष्ट देवताओं का वर्णन और आह्वान नहीं किया गया है प्रत्युत आध्यात्मिक या पारमार्थिक अर्थो में ये सब शब्द उसी परब्रह्म परमात्मा के वाचक होकर वेद में प्रयुक्त हुए हैं और इन शब्दों के द्वारा परमात्मा के अपने विशेष-विशेष गुणों पर प्रकाश पड़ता है।'[13]

ईश्वर के एकत्व की सिद्धि में एक महत्त्वपूर्ण तर्क यह भी है कि यद्यपि हमने एक-एक देवता को एक-एक कार्य का प्रतिनिधि मान रखा है पुनरपि वेद बहुशः भिन्न-भिन्न देवताओं से एक सी प्रार्थना करता है। जैसे हमने अग्नि को अग्रगामिता या मार्गदर्शन का,[14] इन्द्र को ऐश्वर्य या बल का,[14(क)] सोम को आनन्द का[14(ख)] अधिष्ठाता देव माना, परंतु वेद इसके विपरीत अग्नि से ऐश्वर्य की[15] इन्द्रसे मार्गदर्शन की[16] और सोम से बल की[17]भी प्रार्थना करता है।

वेदों को बहुदेववादी समझने का एक बड़ा कारण सम्बद्ध मनीषियों द्वारा देव शब्द के अर्थ को उसके सम्पूर्ण प्रसगों में न समझना भी रहा है। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि प्रश्न-वेद में जो अनेक देवता लिखे हैं, उसका क्या अभिप्राय है? उत्तर - 'देवता' दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसा कि पृथिवी, परन्तु कहीं इसको ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो! इसी मन्त्र में वर्णन है कि जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।' यह उनकी भूल है कि जो देवता शब्द सेईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमात्मा देवों का देव होने से 'महादेव' इसलिए कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति - प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता हैं।[1ग] देवता शब्द बहुआयामी अर्थ रखता है।[18] परन्तु वेदों में बहुदेवतावाद की व्याख्या करने वाले मनीषियों ने प्रायः एक स्वतन्त्र अस्तित्वधारी सत्ता के रूप में व्याख्यायित कर अर्थ प्रकाशन की दृष्टि से इस शब्द को निस्तेज कर दिया । इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि वेदों में एक अद्भुत देवनगरी का सृजन हो गया तथा ग्रीक गाथाशास्त्र की भान्ति वैदिक गाथाशास्त्र बन गया। मैक्सम्यूलर ने इस बहुदेववादी विचार को ' हेनोथीज्म' की संज्ञा दी है।

परमात्म तत्त्व का स्वरूप अत्यन्त रहस्यमय है। उसे इदमित्थम् रूप से वर्णन करना असम्भव है। वेद ने उसे बार-बार गुहाहित (गुहा में स्थित, आवरण युक्त, रहस्यात्मक) बताया है।[19] फिर भी उसके गुण, कर्म, स्वभाव को बतानेवाले अनेक विशेषणों का प्रयोग वेदों में विविध देवताओं के वर्णन-प्रंसग में प्राप्त होता है। उन्हीं के अनुसार परमात्मा के गुण, कर्म एंव स्वभाव को यथावत् जानकर उसके यथार्थ स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए। उत्तर वैदिक एंव दार्शनिक साहित्य ने परमसत्ता के गुणों एंव कर्मों का व्याख्यान करते हुए प्रायः वेदोक्त इन्हीं सूत्र रूपी विशेषणोंको विस्तार एंव तर्क दिए हैं। वेदों के इन स्थलों में परमात्मा के जो गुण शब्दाकारित हो गए हैं उन्हें ऋषियों ने दो वर्गों में विभक्त करके समझा है- सगुण और निर्गुण। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' इसका अच्छा उदाहरण है।[20] इस परमसत्ता को सगुण स्वरूप की दृष्टि से सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, नित्य, पवित्र, साक्षी, अधिष्ठाता, इत्यादि कहा गया है; तथा निर्गुण स्वरूप की दृष्टि से निराकार, निर्विकार, अनादि, अजन्मा, अनुपम, अजर, अमर, अभय, दुःखरहित आदि।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में ईश्वर को व्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्ता, प्रलयकर्त्ता, दयालु, न्यायकारी, निराकार, सर्वशक्तिमान, अनादि तथा वेदज्ञान प्रदाता आदि निरूपित किया है। सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि - 'प्रश्न-ईश्वर व्यापक है, वा किसी देश विशेष में रहता है? उत्तर- व्यापक है। क्योंकि जो एकदेश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्ता, प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता । अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया का होना असम्भव है।'[1घ] ऋषि दयानन्द की ईश्वर विषयक स्थापना को वैदिक ऋचाओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त है।

वेद के अनेक मन्त्र ईश्वर के सर्वव्यापकत्व का कथन करते हैं। ब्रह्माण्ड का अणु-अणु उस प्रभु से ओत-प्रोत है।[21] समस्त ब्रह्माण्ड उसमें समाया है, उसके सर्वव्यापकत्व की दृष्टि से उसका विष्णु-रूप में और पुरुष-रूप में वर्णन किया गया है।[22] यह सब दृश्यमान उसके एक पादमात्र में सन्निविष्ट है।[22(क)] इसका तात्पर्य यह भी है कि उसकी व्यापकता जगत् के बाहर भी है; कम से कम तीन गुणा तो अवश्य ही । उसकी सर्वव्यापकता न केवल अस्ति क्रियावाच्य है अपितु भूतम् और भाव्यम् पदवाच्य भी है।[22(ख)] वस्तुतः उसकी सर्वव्यापकता त्रिकालाबाधित है। वैदिक ऋचा समस्त जगत् तथा भूतों के अन्दर एंव बाहर परमात्मा की विद्यमानता का वर्णन करती है।[23] जगत् बनाने से पूर्व वह था और अब वह समस्त दिशाओं औरप्रदिशाओं में विद्यमान पदार्थों में समाया है।[23(क)] मन्त्रों में परमात्मा की सर्वव्यापकता का निदर्शन विभु, वसु, विश्वम्, विश्वव्यचस्, वैश्वानर, एकपात्, अहि, अशीतम, ब्राह्मण या ब्रह्म[24]आदि पदों द्वारा करवाया गया है।

ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद के मन्त्रों में भूयोभूयः पठित सविता[25] एंव विश्वकर्मा[25(क)] पदों को अन्य पदार्थों के साथ-साथ मुख्य रूप से ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्त्व का ज्ञापक माना है। उनके अनुसार सविता का अभिप्राय है - सर्वस्य जगतो दिव्यस्य प्रसविता उत्पादकः (परमात्मा) और विश्वकर्मा का अभिप्राय है - सर्वजगत्स्रष्टा (परमेश्वरः)। यजुर्वेद में पठित 'तक्षु' पद द्वारा इस बात की भी व्याख्या की गई है कि यह समस्त सृष्टि योजनाबद्ध एंव सुनियमित है।[25(ख)] उसके सृष्टिकर्तृत्व को अभिव्यक्त करने के लिए मन्त्रों मे उसे त्वष्टा, देव, सोम, हंस, जनिता, प्रसव, अवस्यु[26] आदिविशेषणों से विशिष्ट किया गया है।

ऋषि दयानन्दईश्वर को समस्त दृश्यमान का धर्त्ता मानते हैं। ऋषि दयानन्द की यह धारणा भी वेद पर ही आधारित है। यजुर्वेद के सत्रहवें अध्याय में यह प्रश्न उभर कर सामने आया कि इस सृष्टि का आधार क्या था? इसके उत्तर में बहुशः श्रुतियाँ ईश्वर को ही ब्रह्माण्ड का आधार एवं आश्रय घोषित करती है।[27] इसी में समस्त दिव्यशक्ति मिल रही है और इसी पर समस्त भुवन आधृत हैं।[27(क)] वही इस विश्व को उत्पन्न करके पुनः इसका धारक गन्धर्व है। अत्यधिक धारक-शक्ति के होने से ही वह स्वधाव[27(ख)]है। एक मन्त्र हमें सम्मति दे रहा है कि तुम लोग भी समस्त भुवनों को धारण करने वाले तत्व के विषय में जिज्ञासा करो।[27(ग)] अनेक मन्त्र कह रहे है कि द्युलोक, पृथिवीलोक आदि को उत्पन्न करके उसी ने धारण किया है।[27(घ)]परमात्मा की इसी सर्वधारकता को प्रकाशित करने के लिए वेद ने धाता, विधाता, धर्ता विधर्ता, विधारण, वैश्वानर, वसु, धरुणम्, धर्त्रम् [28]इत्यादि विशेषणों का प्रयोग किया है।

ऋषि दयानन्द द्वारा निरूपित ईश्वर की सर्वज्ञानमयता एंव वेदज्ञानप्रकाशकता का सिद्धान्त भी वेदसम्मत है। अनेक मन्त्रों में इस सिद्धान्त की पुष्टि की गई है। पुरुषसूक्त की यह घोषणा है कि उसी से ऋक्, साम्, यजुः तथा छन्द उत्पन्न हुए।[28(क)] अथर्ववेद का कहना है कि वेद रूपी अपूर्व वाणी[29] उसी परम-पुरुष से प्रकट होती है।[30]मनुस्मृति वेद को सर्वज्ञानमय घोषित करती है। वेद की सर्वज्ञानमयता तभी सिद्ध हो सकती है जबकि उसके

प्रकाशक को भी सर्वज्ञानमय माना जाए। मन्त्रों ने वेद की सर्वज्ञानमयता तथा ईश्वर की वेदज्ञान प्रकाशकता का कथन करके प्रकारान्तरसे उसकी सर्वज्ञानमयता का भी कथन कर ही दिया हैईश्वर की इस सर्वज्ञानमयता एवं वेदज्ञानप्रकाशकता को जिन विशेषणों से समादृत किया गया है उनमें मुख्यतः कवि, वाचस्पति, ज्योति एंव विचर्षणि[31]प्रमुख हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बहुशः मन्त्रों में प्रयुक्तवर्चोदाः, वसुवित्तम, विश्ववेदस्, तुथ, श्वात्र, वाक्, सुपायन, विद्वान् एंव प्रचेता[32] आदि पदों को भी परमात्मा की सर्वज्ञानमयता एंव वेद-ज्ञानप्रकाशकता का द्योतक माना है।

अनेक मंत्रों द्वारा उसे सृष्टिकर्ता, धर्त्ता और हर्त्ता, कर्मफलदाता एवं वेदज्ञानप्रकाशक निरूपित कर देने के उपरांत उसकी सर्वप्रकाशकता स्वतः सिद्ध है। इस सर्वप्रकाशकता के साथ-साथ वह स्वयंप्रकाश भी है। उपनिषद् उसके स्वयंप्रकाश होने का बड़ी दृढ़ता से उल्लेख करते हैं। कठोपनिषद् के अनुसार उसके प्रकाश के समक्ष सूर्य, चंद्र एवम् अग्नि की प्रकाशमयता अत्यंत तुच्छ है।[33] उसी के प्रताप और प्रकाश से सभी वस्तुएं प्रकाशित हैं।[34]वस्तुतः संसार की सभी वस्तुओं को उसने अस्तित्व प्रदान किया है, अतः समस्त विश्व उसी पर आश्रित है। सूर्य उसी में उदय और अस्त होता है।[35] यजुर्वेद में उसकी स्वयंप्रकाशकता एवं सर्वप्रकाशकता को स्वयंभू वैश्वानर, ज्योतिष्मान्, सूर्य, ज्योति, शुक्र, चित्रज्योति, सत्य-ज्योति, देव, सविता, सोम, द्युमान्, सम्राट्, दीदिवः, उशिक्[36] इत्यादि पद अभिव्यक्ति दे रहे हैं। ऋषि दयानंद ने अपने वेदभाष्य में अनेक पदों का अर्थ 'स्वप्रकाश' एवं 'स्वयंप्रकाश' किया है।

सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि दयानंद ने योगसूत्र के प्रमाण से ईश्वर को क्लेश, कर्मादि से रहित माना है उन्होंने वेद के प्रमाण से निरूपित किया है कि वह नस-नाडियों आदि से सदा रहित है। वेदमंत्रों के प्रमाण से स्वामी दयानन्द ने ईश्वर को ज्ञानस्वरूप - आनंदस्वरूप आदि घोषित करते हुए उसे इस सृष्टि का अभोक्ता बताया है। इन सब विशिष्टताओं से युक्त होने परअपवित्र या अशुद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आर्यसमाज के द्वितीय नियम सहित अपने साहित्य में ऋषि दयानंद उसे 'पवित्र' और 'पवित्रकर्त्ता' घोषित करते हैं। वेद के अनुसार भी वह परमेश्वर अत्यंत पवित्र है पाप का लेश भी उसमें नहीं है।[37] समस्त भूतों में एवं विश्व में वही पवित्रता का संचार करने वाला है। उसके इसी वैशिष्ट्य् को ध्यान में रखकर याजक और उसके यज्ञ के लिए एक मन्त्र द्वारा प्रार्थना की गई है कि वसु आदि तैंतीस देवों को उत्पन्न और पवित्र करने वाले देव परमात्मा उसे और उसके यज्ञ को पवित्र करें।[38]परमदेव ने अपनी पवित्रता का सिञ्चनसूर्य की किरणों एंव जलसमूह में किया है; इसी से ये विश्व का शोधन करने में समर्थ हैं।[39] वही देवता अपनी पवित्रता से मुझे (हमें) पवित्र करे।[39(क)] सृष्टि में यज्ञ शोधनहार है अतः उस यज्ञ द्वारा देवों के यजनार्थ एवं दिव्य कर्म के लिए हम शुद्ध बनें ।[39(ख)] वही यज्ञ हमें पवित्र करे।[39(ग)] हमारा समस्त पराभव अशुद्धता के कारण ही होता है; अतः वह परमात्मा हमें यज्ञों द्वारा पवित्र करता है।[40] एक श्रुति प्रार्थना कर रही है कि ज्ञान और वाणी का अधिपति मुझे पवित्र करे। सूर्य की किरणें मुझे पवित्र करें। हे पवित्रता के अधिपति परमात्मन्! आपके शुद्ध और पवित्र सामर्थ्य से मैं पवित्र हो जाऊँ।[40(क)] वस्तुतः उस परमेश्वर के सम्पर्क में आनेवाले भक्त अपवित्र रह ही नहीं सकते।[41] ईश्वर के इस शुद्धस्वरूप तथा शोधनकारिता को मंत्रों में मार्जालीय, मृष्ट, शुन्ध्यू, पवमान शोचिष्ठ[42],आदि पदों द्वारा कहा गया है।

समस्त वैदिक वाङ्मय में ईश्वर की आवश्यकता तीन क्रियाओं के सम्पादन हेतु सर्वाधिक अनुभव की गई है- (क) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय हेतु (ख) वेदज्ञानप्रकाशन हेतु (ग) जीवों को उनके कर्मों का यथावत्

फल देने हेतु। ईश्वर की सिद्धि विषयक समस्त दार्शनिक चिंतन प्रायः इन्हीं तीन हेतुओं पर अवलम्बित है। ऋषि दयानन्द ने अपने साहित्य में भी ईश्वर के कार्यों का उल्लेख करते हुए उसके कर्मफलप्रदातृत्व का विशेष रूप से कथन किया है ईश्वर के कर्मफलप्रदातृत्व के विषय में ऋषि दयानन्द का चिन्तन है कि शुभाशुभ कर्म जड़ होने के कारण स्वयं अपना फल अपने आप नहीं दे सकते। इन कर्मो का कर्त्ता भी इन शुभाशुभ कर्मों के फलों को स्वयं नहीं ले सकता क्योंकि तब अशुभ कर्मों का फल कोई लेना ही नहीं चाहेगा। इसलिए इन कर्मों के सुख-दुख रूप फलों को देने वाले ईश्वर को मानना ही होगा। सत्यार्थप्रकाश के बारहवेंसमुल्लास में वे लिखते हैं कि 'जैसे चोर आप से आके बंदीगृह में नहीं जाता और स्वयं फांसी भी नहीं खाता, किन्तु राजा देता है, इसी प्रकार जीव को शरीर धारण कराने के और उसके कर्मानुसार फल देने वाले परमेश्वर को तुम भी मानो।' वस्तुतः समस्त भुवन उसी ईश्वर के यज्ञ, श्रम, तप और संकल्प का सुफल है। इसके सृजन के बाद इसी में आविष्ट है। आविष्ट इसलिए है जिससे कि वह इनका धारण और संचालन कर सके। इनका धारण और संचालन करता हुआ ही वह समग्र जगत् का एकमात्र सक्षम एंव स्वंयभू अधिपति है। संसार में उसका अधिपतित्व प्राकृतिक नियमों के रूप में प्रतिपल अभिव्यक्त हो रहा है- न केवल प्राकृतिक नियमों के रूप में अपितु हमारे समस्त शुभाशुभ कर्म-फलों के रूप में भी हमारे समस्त कर्मो पर वह पक्षपात शून्य होकर फल का निश्चय करता है। यतः वह हमारे समस्त कर्मों को यथार्थतः जानता है अतः उनके फलों कानिर्णय भी वह यथावत् ही करता है। हमारे समस्त शुभाशुभ कर्मों के निर्धारण के पश्चात् ही वह समस्त जीवों को जन्म प्रदान करता है। उसके अधिपतित्व एंव कर्मफल प्रदातृत्व के कारण ही उसे मन्त्रों में राजा, विधाता आदि पदों से कहा गया है।

वह ईश्वर समस्त इहलौकिक ऐश्वर्यों का प्रणेता भी है और धर्त्ता भी है।[42(क)] लौकिक व्यक्ति ऐश्वर्यों का दैशिक और कालिक नेता एंव धर्ता होता है; किंतु परमात्मा इनका सार्वकालिक एंव सार्वदेशिक नेता एवं धर्ता है।[43] वह न केवल नेता है अपितु प्रणेता भी है। इन्द्र रूप में उसके बहुशःस्तवन का आधार ऐश्वर्यों के साथ उसका एतादृश संबंध ही है।[1ङ.] हिरण्यगर्भ रूप में उसकी अवस्थिति इन्हीं ऐश्वर्यों के कारण है।[44] ये ऐश्वर्य ही उसकी भगवत्ता के आधार हैं।[45]यह समस्त कमनीय ऐश्वर्य उसी से प्रभावित होकर उसी में विलीन हो जाते हैं। उसकी इस ऐश्वर्यशालिता ने यजुर्वेद में अनेक ऐश्वर्यकामी प्रार्थनाओं को जन्म दिया है। ये सभी प्रार्थनाएँ और कामनाएँ उसे ऐश्वर्यों का आगार और आधार मानकर ही तो अपने याजग, याचक, और साधक की भावनाओं को स्वर दे रही हैं। परमात्मा यज्ञपुरुष है। सृष्टि रूप प्रथम यज्ञ का ब्रह्मा भी, यजमान भी, उद्गाता भी और अध्वर्यु भी वही था। उसके सर्वहूत यज्ञ का सुफल ही यह सृष्टि है। न केवल सृष्टि का उत्पादक अपितु धारक भी यह यज्ञ ही है। इन संदर्भो में परमात्मा यज्ञरूप है।स्वामी दयानंद सरस्वती ने कई याजुष मन्त्रों का व्याख्यान करते हुए यज्ञ शब्द को परमात्मा का वाचक माना है।[46] सत्यार्थप्रकाश में उसकी यज्ञरूपता का वर्णन करते हुए स्वामी जी का कथन है कि 'जो समस्त जगत् के पदार्थो को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि- मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम 'यज्ञ' है।यज्ञरूप होने के साथ-साथ हमारे द्वारा क्रियमाण यज्ञों का वह अधिपति भी है। हमारी समस्त आहुतियाँ विभिन्न देवों को माध्यम बनाकर उसी की ओर जाती हैं। वहीं पहुँचकर हमारी आहुतियाँ फलीभूत होती हैं। बहुधा मंत्रों के माध्यम से याजक उसी से प्रार्थना करता है कि वह हमारी यज्ञ का संरक्षण एंव संवर्द्धन करे।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने ईश्वर का जो स्वरूप स्वीकार किया है उसका आधार वेद है। वेद की साक्षी के बिना वह ईश्वर के सम्बन्ध में किसी भी तथ्य का समर्थन नहीं करते है।

सन्दर्भ सूची

1. सत्यार्थप्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती; वैदिक पुस्कालय, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर; 39वाँ संस्करण; 2005 ईस्वी; (क) तृतीयसमुल्लास पृष्ठ 79. (ख) सप्तमसमुल्लास; पृष्ठ 239, (ग) सप्तमसमुल्लास, पृष्ठ 203 (घ) सप्तमसमुल्लास पृष्ठ 205-206 (ङ) प्रथमसमुल्लास, इदि ऐश्वर्ये परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः।
2. श्रीमद्भगवद्गीता; टीकाकार श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड,पञ्चम संस्करण, 1983ईस्वी; (क) 4.7-8; यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।(ख) 13.4 ऋषिभिर्बहुधागीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
3. अथर्ववेद (क) 10.7.13,27 यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा ।। यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः।।ऋग्वेद 1.139.11 ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ। अप्सुक्षिता् महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्।।
4. (क) यजुर्वेद 20.11 त्रया देवा एकादश त्रयत्रिंशाः सुराधसः। (ख) वही 20.36 त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता। (ग) वही 27.33(घ)वही 33.7 त्रीणि शता त्री सहस्राणि अग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।(ङ)वही 32.1 तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायु तदु चन्द्रमा। तदेव शुक्रं तद् ता आपः स प्रजापतिः।।
5. ऋग्वेद 1.164.46 इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि ...... एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ....।।
   तुलना, वही 10.114. 4 सुपर्ण विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
6. अथर्व0 13.4.16-21 न द्वितीयो न तृतीय .... सर्वे अस्मिन् देवता एकवृतो भवन्ति।।
7. ऋक्0 8.58.2 एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एक सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः।
   एकैवोषा सर्वमिदं विभाति एकं वा इदं वि बभूतसर्वम्।।
8. यजु0 17.27 यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नंभुवना यन्त्यन्या।।(क)वही 17.2 देवानां समवर्तताऽसुरेकः।(ख)वही 27.26 यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्।
9. ऋक् 0 3.55.1-22 महद्देवानामसुरत्वमेकम्।
10. (क) कठोपनिषद् 2.1.9 यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। तं देवाः सर्वे र्पितास्तदुनात्येति कश्चन, एतद्वै तत्।।(ख)बृहदारण्यकोपनिषद् 1.5.23यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छतीति ....।।
11. महाभारत, अनुशासन पर्व 160.42 एकधा च द्विधा चैव बहुधा स एव हि। शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रशः।।
12. निरुक्त 7.4 महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनो अन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति।।
13. वेद और उसकी वैज्ञानिकता; आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, प्रथम संस्करण 1990, पृष्ठ 380

14. यजु0 40.16 अग्ने नय सुपथा(क)वही, 27.37(ख)वही, 26.25 स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
15. ऋक्0 1.1.3अग्निना रयिमश्नवत्।
16. यजु0 27.37
17. ऋक् 9.17.21 सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम्।
18. निरुक्त 7.15 देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा।
19. यजु0 32.8 वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासत्। तुलना, अथर्व0 वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहायाम्।
20. श्वेताश्वतरोपनिषद् 6.11 एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
    कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।
21. यजु0 32.8 तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।
22. द्रष्टव्य, यजुर्वेद (दयानन्दभाष्य) 5.15, 16, 18, 19, 20, 21, 24
    वेवेष्टि व्याप्नोति चराचर जगत् स विष्णुः।
    तुलना, वही 40.1 ईशावास्यमिदंसर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
    (क) वही, 31.3 पादोऽस्यविश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
    तुलना, वही, 5.33....एकपादहिरसि बुध्न्यः..........
    (ख) वही 31.2 पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
23. यजु0 40.5 तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाहत।(क)वही, 32.4 एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाःपूर्वो ह जातः ....
24. उद्धृत पद यजुर्वेद के निम्न मन्त्रों में अलग-अलग या संयुक्त रूप से पढ़े गए हैं2.20, 3.15,25, 4.11, 15, 5.31, 33, 11.5, 17.14, 23.3, 48, 32.1
25. यजुर्वेद दयानन्दभाष्य 1.10, 2.11-12; 3.35; 4.4; 4.26; 6.1; 11.4; 12.66; 30.2; 6.30, (क)वही 13.16, 45, 55; 14.12, 14; 17.18, 21-24, 26,32, (ख)वही 17.20 यतोद्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
26. उद्धृत पद यजुर्वेद के निम्न मन्त्रों में अलग-अलग या संयुक्त रूप से पढ़े गए हैं। ऋषि दयानन्द ने इन पदों को ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्त्व का ज्ञापक माना है। द्रष्टव्य यजुर्वेद दयानन्दभाष्य; 1.10, 25, 2.24, 3.56; 4.4, 32; 5.7, 36; 7.25, 9.13; 10.24 17.27, 62, 63, 67,; 19.43; 32.10
27. यजु0 13.4 हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां...।।(क)वही, 17.30..... यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे। .... यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।(ख)वही, (सायणभाष्य) 17.21(ग)वही, 17.20 मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।(घ)वही, 32.6 येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभितं येन नाकः। योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः....।।
28. उद्धृत पद यजुर्वेद के निम्न संख्यक मन्त्रों में पृथक्-पृथक् या संयुक्त रूप से पठित हैं1.8, 18, 3.25, 12.29; 17.26, 27, 82, 20.23; 32.10, 25,(क)वही, 31.7 तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।
29. अथर्व0 10.8.83 अपूर्वणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।

30. वही 10.7.33 यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।।
31. द्रष्टव्य यजुर्वेद 2.4; 3.9; 19.42; 40.8
पवमानः सो अधः नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा।।
32. इस सन्दर्भ में यजुर्वेद के अधः प्रदत्त मन्त्रों का स्वामी दयानन्द कृत भाष्य द्रष्टव्य हैः 3.17, 24, 28, 39, 88; 5.21, 31, 33, 36, 8.29; 25.19,40.16
33. कठोपनिषद् 2.2.15 न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतोभान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।
34. मुण्डकोपनिषद् 2.10 यच्छुभ्रं ज्योतिषांज्योतितद्यदात्मविदो विदुः।
तुलना भगवद्गीता 15.12 यदादित्यगतं तेजो जगत्भासयतेऽखिलम्।
35. यजु 32.7 यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति।
36. सन्दर्भित पद यजुर्वेद के अधः प्रदत्त मन्त्रों में पृथक्-पृथक् अथवा संयुक्त रूप से पठित हैंः 1.10,10, 25; 2.4, 11, 12, 26; 3.9, 26, 35, 38; 4.4, 26; 5.7, 32, 36; 6.1; 8.9; 9.13; 11.67; 12.29, 66; 15.64; 17.62, 80; 19.43; 20.21, 23; 23.63; 27.10; 30.2; 32.1; 33.37-39, 41; 36.24; 40.8
37. यजु0 40.8 शुद्धमपाविद्धम्।
38. यजु0 (दयानन्दभाष्य) 1.3देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।
39. यजु 1.12(क)वही, 19.42 पवमानः सो अद्यः नः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा।।(ख)वही, 1.73(ग)वही, 19.40 पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतँqरनु।।
40. यजु0 1.13यद्वो शुद्धा पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि।
तु०, वही 19.41.. यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा।।
(क) वही, 4.4
41. ऋक् 2.23.4
42. द्रष्टव्य यजु0 3.26; 5.32 (क) वही, 34.35-36;
43. ऋक् 40.8 अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः।
44. यजु0 13.4, 23.1, 25.10 हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
45. वही 34.38 भग एव भगवां अस्तु।
46. द्र0 यजु0 (दयानन्दभाष्य) 17.62, 18.1, 23.62, 22.23, 31.6, 7, 9, 16